ISSN No. : 2394-0344 **REMARKING :** VOL-1 * ISSUE-5*October-2014

साहित्य और लोकमंगल

Dear Author,
Please provide **ABSTRACT**, **KEY WORDS and REFERENCES must be in MLA pattern**, for this paper with the proof urgently otherwise your paper may be transfer for next issues untill above are recieved.

कैलाश चन्द शर्मा
व्याख्याता
संस्कृत विभाग
राजकीयस्नातकोत्तर महाविद्यालय,
सवाई,माधोपुर,राज.

सारांश

मुख्य शब्द : Please Add Some Keywords

प्रस्तावना

इस परिवर्तनशील संसार में न तो सदा और सर्वत्र लहलहाता वसन्त विकास रहता है न सुख–समृद्धिपूर्ण हास–विलास। समय ही प्राणियों को सबल–निर्बल करता है। वर्षा के पश्चात शरद् में अपनी मधुरता के कारण से वीतरागियों को चंचल करने वाले मयूरों के शब्द कर्कश और हंसों के कर्कश शब्द मधुर हो जाते है।[1]

समय की प्रबलता से शत्रुओं के बढ़ जाने पर बलवान भी असमर्थ हो जाता है, क्योंकि माघमास में मन्द किरणों वाला सूर्य बढ़े हुये हिम को नष्ट नहीं करता।[2]

शिशिर के आतंक से म्लान और खिन्न वनस्थली के बीच से ही क्रमशः आनन्द की अरूण आभा को फैलाने वाली वसन्त श्री का उदय होता है। इसी न्याय से लोक की पीड़ा, बाधा, अन्याय, अत्याचार के मध्य में दबी हुई आनन्द ज्योति भीषण शक्ति में परिणत होकर आगे बढ़ती हुई लोक मंगल और लोकरजन के रूप में अपना प्रकाश करती है। वस्तुतः विरूद्धो का सामजस्य ही कर्मक्षेत्र का सौन्दर्य है। लोक में फैली दुःख की छाया हटाने के लिए ब्रह्म की आनन्द कला जो शक्ति का रूप धारण करती है, उसकी भीषणता में भी अपूर्व मधुरता उसकी करालता में भी मृदुता और प्रचण्डता में भी आर्द्रता परिलक्षित होती है।

इस लोक में सौन्दर्य का उद्घाटन असौन्दर्य को हटाकर होता है। आदिकवि वाल्मीकि तथा व्यास ने अधर्म और अमंगल के पराभाव से धर्म और मंगल का सौन्दर्य ही तो अपने रामायण और जयकाव्य में प्रकट किया है। महाकवि हमारे सामने असौन्दर्य, अमंगल, अत्याचार, क्लेश इत्यादि भी रखता है, रोष हाहाकार और ध्वंस का दृश्य भी लाता है, पर सारे भाव, सारे रूप और सारे व्यापार भीतर–भीतर आनन्द कला के विकास में ही योग देते पाये जाते है।

जिस व्यवस्था से लोक में मंगल का विधान होता है उसे धर्म कहते है। अधर्म की वृत्ति को हटाने में धर्म की तत्परता, आनन्दकला के विकास की और बढ़ती हुई गति है। इस गति में भी सुन्दरता है और इसकी सफलता में भी।[3]

उपर्युक्त कथन के अनुसार संस्कृत के विदग्ध महाकाव्यों के कथानकों का अध्ययन करने पर यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि सभी कथानकों में दैत्यों, असुरों और दुष्टों के क्लेश, अत्याचार रोष हाहाकार व ध्वंस आदि कार्यो से 'त्राहि त्राहि' करने वाले देवगण परमपिता सर्वशक्तिमान ब्रह्म, विष्णु और महेश के शरण जाकर अपनी दयनीय दशा का उल्लेख करते है। फलतः एक–दो काव्यों के कथानकों को छोड़कर, सभी कथानकों के नायकों का अवतार दैत्यों, असुरों और दुष्टों का नाश करने, अमंगल, अशुभ, अधर्म, अन्याय, अत्याचार और बाधा को दूर करने के हेतु ही होता है। अश्वघोष ने इस तथ्य को अपनी'बुद्धचरित' में बुद्ध भगवान् के शब्दो में इस प्रकार कहलाया है। इस संसार के दुःख क्लेश आदि को देखने के पश्चात् बुद्ध भगवान ने निश्चय किया 'जरा मरण का विनाश करने की इच्छा से वन में रहने का अपना निश्चय याद रखते हुए उसने नगर में प्रवेश किया। बुद्ध भगवान् ने अपने पिता राजा से

'मोक्ष के हेतु मैं पारिव्राजक होना चाहता हूँ।' कण्ठक को संदेश देते हुये कहा 'जन्म और मृत्यु का क्षय करके या तो वह शीघ्र ही आवेगा या प्रयत्नहीन और असफल होकर मृत्यु को प्राप्त होगा।[4]''

जन्म होने पर उसने घोषणा की कि जगत के हित के लिये ज्ञानार्जन करने के लिये मैं जन्मा हूँ, संसार में मेरी यह अन्तिम उत्पत्ति है।[5]

ब्राह्मणों ने उनके विषय में कहा–वह दुःख में डूबे जगत् का उद्धार करेगा।[6]

कुमारसम्भव में देवों ने ब्रह्मा जी से तारकासुर के विनाशक तथा अमंगल कर्मों का उल्लेख सर्ग 2 में 31 से 51 तक श्लोकों में किया है और अन्त में प्रार्थना की है कि ''हे प्रभो! जिस तरह मुमुक्षु जन संसार के नाश होने के लिये निवृत्ति धर्म की इच्छा करते हैं, उसी तरह विपत्ति में पड़े हुए हम सब भी तारकासुर के नाश के लिये देवसेना का अभिनायक उत्पन्न करना चाहते है।[7]''

यह सुनकर ब्रह्मा जी ने देवों से योग्य सेनापति के लिये शंकर के पुत्र की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करने के लिये कहा है।[8]

रघुवंश में–देववर्ग रावण से पीड़ित होने पर, विष्णु भगवान के पास गया।[9]

उनकी स्तुती तथा कष्ट निवेदन करने के पश्चात् विष्णु ने कहा ''मैं दशरथ का पुत्र होकर उस रावण के मस्तकरूप कमलसमूह को तीक्ष्ण बाणों से युद्धभूमि के बलियोग्य करूंगा।[10]

अन्य काव्यों किरात, शिशुपाल–वध, हरविजय, श्रीकंठचरित, रावणार्जुनीय धर्मशर्माभ्युदय, रामचरित आदि में लोकपीड़ा निवारणार्थ ही उपर्युक्त काव्यों के नायकों का अवतार हुआ है।

ऐतिहासिक शैली के काव्य में भी इसी रीति को अपनाया गया है। विक्रमांकदेवचरित में इन्द्र ब्रह्मा जी के पास जाकर निवेदन करता है कि हे नाथ ब्रह्मा जी के गुप्तचर ने पृथ्वी पर होने वाले ऐसे उपद्रवों की मुझे सूचना दी है कि जिनसे देवताओं का यज्ञों में मिलने वाले भागों का उपयोग केवल स्मरण करने का ही विषय हो जाएगा, ऐसा मैं अनुमान करता हूँ।[11]

इसके पश्चात् ब्रह्मा जी के चुल्लू में से एक वीर पुरूष उत्पन्न हुआ और उस वीर ने ब्रह्मा की आज्ञा से दैत्यों के नाश करने का बीड़ा उठाया।[12] इस प्रकार कवियों ने प्रथम अमंगल और अधर्म की भयानक छाया और अत्याचार तथा क्लेश की करालता दिखाने के पश्चात् सर्वशक्तिमान के रोषजन्य हाहाकार और धवंस को दिखाते हुए धर्म और मंगल का सौन्दर्य भी चित्रित किया है।

फलतः अधर्म पर धर्म की, अन्याय पर न्याय की और अमंगल पर मंगल की, असत्य पर सत्य की विजय सदा होती है। इस आदर्श सिद्धान्त का चित्रण करने हेतु ही संस्कृत के अधिकांश विदग्ध महाकाव्य बढ़ती श्रृंगारिक प्रवृत्ति में भी (कालिदास से श्रीहर्ष तक) वीररसप्रधान है।

सन्दर्भ सूची

1. शिशुपालवध–संर्ग 6/44
2. वही 63 सर्ग 6
3. काव्य में लोक मंगल की साधनावस्था, चिन्तामणि पृ. 212–217
4. बुद्धचरित–सर्ग 5–23, 28 सर्ग 6–52
5. वही सर्ग 1–15
6. वही सर्ग 1–33
7. कुमारसंभव–सर्ग 2–51 चौ. प्रकाशन
8. वही सर्ग 2, 61
9. रघुवंश–सर्ग 10/5
10. वही सर्ग 10/44
11. विक्रर्माकदेवचरित–सर्ग 1/44, 45
12. वही सर्ग 1/45, 46